शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

तरुण भटनागर का कथा साहित्य: सामाजिक विसंगतियों के सन्दर्भ में

आरती चौहान (शोधार्थी)
के. आर. जी. कन्या महाविद्यालय
ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

साहित्य सृष्टि का मूलाधार समाज है। साहित्यकार इसी रास्ते से गुजरते समय अपनी सामग्री को एकत्रित करता है तदुपरांत उसी सामग्री को अपने भावविचारों और कल्पना के माध्यम से नए रूप में ढालकर पाठकों तक संप्रेषित करता है। प्रस्तुत शोधपत्र तरुण भटनागर के कहानी संग्रह 'गुलमेंहदी की झाड़ियाँ' की कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को उद्घाटित किया गया है। इनमें शरणार्थियों का जीवन और समस्याएं, सपेरों की दंतकथाओं, मिथकों की परंपराओं से जूझता जीवन गरीबी और भुखमरी का दंश झेलते कचरा बीनने को अभिशप्त बच्चों की दशा, पवित्र प्रेम जो जीवन ही नहीं मृत्यु के बाद भी जीवित है सरकारी महकमे की उदासीनता और असंवेदनशीलता, बालमनोविज्ञांन, राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की प्रबलता आदि को चित्रित किया गया है। ये विसंगतियां और समस्याएं देश और समाज के लिए घातक हैं। इनकी उपस्थिति से समाज और देश का मार्ग अवरूद्ध होता है। अतः हमारा प्रयास समाज से इन समस्याओं को दूर करना होना चाहिए जिससे समाज प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

कुंजी शब्द - *अवदान, विद्रूपताएं कम्यून पूर्वाग्रहों अवरूद्ध*

प्रस्तावना

एक व्यक्ति विशेष के अंदर उसका जन्मजात ज्ञान, सहज बुद्धि, माता-पिता और ईश्वरीय शक्तियाँ अहम् भूमिका अदा करती है। वही साहित्यकार लेखक नायक बन पाता है, जो अपनी रचनाओं में लोगों की तकलीफों, पीड़ाओं और सराकारों को शब्द देता है। तरुण भटनागर जी ऐसे ही साहित्यकारों में जाने पहचाने जाते हैं, जिन्होने अपने साहित्य में दो सदी के अवान्तर में आयी तमाम समस्याओं, चुनौतियों और उनसे सतत संघर्षों को अपने रचनात्मक सरोकारों में इस विशिष्ट अंदाज में शामिल किया है, कि पाठक यथार्थ के ज्ञात-अज्ञात अवकाश में स्वयं को पाता है-कभी सहमा, कभी प्रेमिल, कभी जूझता, कभी हास्यापद, कभी पीड़ित,.. किन्तु अंतत: जीवित। संगति-असंगति के विडम्बानात्मक वर्तमान का संधान ही तरुण भटनागर का रचनात्मक अवदान है। तरुण भटनागर एक साथ साहित्य की कई विधाओं और माध्यमों से अपनी हर कृति को नए अंदाज में प्रस्तुत करने के कायल हैं। समकालीन कथा साहित्य में नवीन प्रवृन्तियों के साथ को सफरनामा की तरह समयानुसार नए अंदाज में क्रांतिकारी रूप में सृजन करने में आपका कोई जवाब नहीं।

विनोद कुमार शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, गजानन माधव मुक्तिबोध जैसे प्रसिद्ध रचनाकारों की जन्मभूमि में जन्मे समकालीन कथा साहित्य में अपनी सृजन प्रकिया से बहुत ही चर्चित लेखक के रूप में प्रसिद्ध तरुण भटनागर जी का जन्म 24 अक्टूबर सन् 1968 को रायपुर छत्तीसगढ़ में

हुआ है। माता-पिता के स्नेहाधिक्य के कारण इनका बचपन हँसी-खुशी से बीता। तरुण भटनागर जी का बचपन ज्यादातर छत्तीसगढ़ में बीता। छत्तीसगढ़ के बारे में आपने लिखा है - "वह स्थान जो सबसे पहले स्मृति में आता है - कांकेर। उन दिनों वह एक कस्बा था, तहसील। माता-पिता वहीं के स्कूल में शिक्षक थे। हमारा घर जहाँ था उसके ठीक सामने पहाड़ियाँ थी, जंगल थे, और एक बड़ा सा तालाब था। बचपन का वह समय जब मैंने स्कूल जाना शूरू नहीं किया था, इसी जगह बीता। जंगलों में घूमते, तालाब के गिर्द भटकते और कभी-कभी तो पहाड़ पर भी हम चढ़ जाते थे। जब माता-पिता स्कूल जाते और घर में नहीं होते थे, एक आदिवासी महिला जिसका नाम गोदावरी था, मेरी और मेरे छोटे भाई की देखभाल करती थी।"

अतः यह बात स्पष्ट है कि साहित्यकार का युग परिवेश उसे विचारों के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। परिवेश से संबंधित मुक्तबोध के विचार इस प्रकार हैं - "जो परिवार के मूल्य होंगे वे जीवन में होगे ही और वे साहित्य में भी उतरेंगे। हाँ ये सही है कि साहित्य में आकर उसकी रूपरेखा बदल जाएगी, किन्तु उसके तत्व कैसे बदलेंगे। जिन्दगी का जो रुख है, जो रवैये हैं, जो एटीट्यूज है वे साहित्य में प्रकट होंगे।...साहित्य विवेक मूलतः जीवन विवेक है।'1

कथा साहित्य में सामजिक विसंगतियां

तरुण भटनागर के कहानी संग्रह 'गुलमेंहदी की झाड़ियां' की पहली कहानी 'हैलियोफोविक' है। कहानी का केन्द्र खान नाम का एक लड़का है। यह कहानी शरणार्थी कैम्प की कहानी है। 'खान' नाम का लड़का कन्धार का रहने वाला है जिसने दहशतगर्दी के कारण अपने माता-पिता और परिवार वालो को खो दिया है और अकेला केम्प में शरणार्थी बनकर रह रहा है। "शरणार्थी जीवन एक त्रासद भरा जीना है जो हर पल और हर क्षण दुख से भरा यातनाओं को झेलना है। कैंप क्रूर और निर्दयी लोगों की बस्ती था। गरीबी और भुखमरी के कारण पागल और निर्मम लोग जहाँ किसी का मरना खुशी लाता था, लोग हत्या और लूट के लिए हमेशा तैयार रहते । इस कैंप को देखकर यकीन करना मुश्किल था कि ये सेब लोग अच्छे घरों से थे । शान्त और अच्छे घरोंवाले लोग, जो छोटी छोटी इच्छाएँ पालते हैं और यकीन करते हैं, कि वे और उनके माँ-बाप, बहन... लम्बी उम्र जिएँगे। पर यहाँ उनकी औरतों और बच्चों को कुत्तों की भांति लाठियों से पीटकर मार डाला जाता था और उन्हें इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ता था। कुछ लोग आत्महत्या कर लेते, ज्यादातर नए लोग.. पर अधिकतर ऐसा नहीं कर पाते थे।"2

तरूण भटनागर के इस संग्रह की दूसरी कहानी 'गुणा-भाग' है। सपेरों की दंतकथाओं, मिथकों की परंपराओं से जूझते और उनकी जीवटता से लड़ते जीवन को दिखाती है। सपेरों की बस्ती जहां वरदान और भगवान के फल के नाम पर अंधविश्वास और कुरीतियाँ ही व्याप्त हैं। सपेरों की अपनी अलग ही दुनिया हुआ करती है। उनका पढ़ाई-लिखाई से कोई वास्ता नहीं था। सपेरों की बस्ती में महिलाओं की स्थिति ठीक नहीं थी। वे अशिक्षित और अंधविश्वास में जकड़ी हुई हैं। "आदमी की लाश को, गांव के आदमी लोग ले गए औरत ने अंत तक उसे नहीं देखा। औरत को लगा काश वह देख लेती। औरत अब मुस्कुरा रही थी। वह पीपा भगत का शाप नहीं लेना चाहती थी। साँप के कांटे की मौत शुभ है - बरसों पहल, ब्याह से बरसों पहले उसकी माँ

ने उसे बताया था। उसकी माँ को उसकी मां ने बताया था।"3

झुग्गी-झोपड़ियों में जीवन बिताने वाले किस तरह अपने रोजाना की जरूरतों की पूर्ति के लिए किस तरह संघर्ष करते हैं और उससे बचपन मन किस तरह घायल हो जाता है, 'गुलमेहंदी की झाड़ियां' कहानी में दिखाया गया है। "उस दिन धूप बहुत तेज थी। सुबह से ही लू चल रही थी। रेलवे ब्रिज की रोड़ से उठती गर्म हवा सड़क के ऊपर दिख रही थी। मानो कोई पारदर्शी पर्दा हवा में डोल रहा हो। गर्मी के कारण रोड़ पर जगह-जगह पानी गिरे होने का भ्रम होता था। डामर पिघलकर फिसलन भरी हो गयी थी। इस रोड से चलकर ब्रिज के नीचे उतरते समय वह पिघली डामर से सावधान रहती थी । पिछले साल ऐसी ही गर्मी में उसकी चप्पल डामर में फंसकर टूट गयी थी। चप्पल ऐसी टूटी कि फिर जुड़ नहीं पायी। उसे पूरे गर्मी नंगे पैर ही चलना पड़ा था। पिछले डामरवाली रोड पर तपती धूप में चलते हुए उसे तकलीफ होती थी। पैर का तला जलने लगता।"4

तरूण भटनागर की कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियां' उस अयाचित यातना को दिखाती है जिसके हकदार गरीबी का दंश झेलते वे बच्चे नहीं है यह उनकी नहीं उनकी जन्मजात परिस्थितियाँ हैं। वे बच्चे अपनी पैदाइश के गुलाम हैं। कई जगहों पर कहानी की मार्मिकता निरीहता मन को रूला देने वाली हैं। परन्तु शायद इसका कोई हक नहीं है। "वह देर रात तक जागती रही। उसकी भूख बढ़ गयी थी और उसका खुद से किया वादा पक्का होता जा रहा था। .....हां, वह नहीं सोचेगी, काम करते समय स्कूल वाली बात तो वह बिल्कुल नहीं सोचेगी। कोई बात नहीं। कोई सपना नहीं। वह कुछ नहीं गुनेगी। सपने देखने में खुखी तो होती है। पर काम छूट जाता है, माँ की मार पड़ती है, रात भर भूखा सोना पड़ता है। सपने देखने से बड़ी तकलीफें होती हैं। उसका विश्वास पक्का हो गया था। उसकी गलती है.... । अब से कचरा बीनते समय वह कोई सपना नहीं देखेगी।"5

हम सभी ने समय के बीतने के बारे में सुना और पढ़ा है, परन्तु शहर के बीतने अर्थात शहर जो 'बीत चुका है उससे गुजरने की कहानी तरूण भटनागर की कहानी 'बीते शहर से फिर गुजरना है' में बयां की गई है। मनुष्य को यादें भी आबाद करती है, यादें विस्थापित भी करती हैं। "कौई और शहर होता तो अब तक मर चुका होता। कई दूसरे शहर भी हैं, जहाँ मैं रहा हूँ और जिन्हें मैं छोड़ चुका हूँ। वे सारे शहर मर चुके हैं। बीते शहरों में से यह एक शहर अभी तक जिंदा है।"6

तरूण भटनागर ने ज्यादातर कहानियां समाज में व्याप्त सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं को रेखांकित करते हुए लिखी हैं। उनकी हर एक कहानी किसी ना किसी सामाजिक समस्या को उजागर करती हैं जिसका वाकई में हमारे जीनव से संबंध होता है। ऐसी ही मृत्यु और मार्मिकता का बोध कराती हुए एक कहानी है 'फोटो का सच' जो हमारे सरकारी महकमे की उदासीनता और असंवेदनशीलता को रेखांकित करती है। यह कहानी एक ऐसे बूढ़े बाप की जो है, अपने जवान बेटे के शहीद हो जाने के बाद मिलने वाले मुआवजे के लिए एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर अपना अपने बेटे के साथ संबंध का सबूत पेश करने के लिए चक्कर काटता है। इस कहानी में एक बूढ़े और असहाय पिता की भाग दौड़ और अपने बेटे की मृत्यु की पीड़ा झेलते दिखाया गया है।

"जब वे सरकारी दफ्तर पहुंचे वे हाँफ रहे थे। वह दफ्तर बिल्डिंग की तीसरी मंजिल पर था। वे कुछ दिनों से कई बार यहाँ आते रहे हैं। वे बड़ी मुश्किल से सीढ़ियां चढ़कर इस दफ्तर तक पहुँच पाते हैं। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उन्हें एकाध बार थकावट भरा चक्कर आ जाता है। ऐसे में वे अपनी छड़ी किनारे टिकाकर किसी कुर्सी पर बैठ जाते हैं। दफ्तर की हर मंजिल पर प्रतीक्षार्थियों के लिए कुछ कुर्सियाँ रखी हैं। जहां बैठकर उन्हें सुस्ताना पड़ता है।"7

जीवन में छवियों का निर्माण कैसे होता है। जब हम उन छवियों को अपने विकासशील मानस पर अचानक प्रत्यारोपित करने का प्रयत्न करते हैं, तो वह किसी तरह उन मसलों पर सोच रहे होते हैं। बच्चों की दुनिया अलग होती है और वे दुनिया को अलग नजरिए से देखते हैं। तरूण भटनागर ने अपनी कहानी 'कौन सी मौत' में बच्चों के मन में मृत्यु की छवि को लेकर उपजे अंतर्द्वंद्व को रेखांकित किया है। कि मृत्यु भी इम्पोर्टेंट और अनइम्पार्टेंट लोगों की अलग-अलग तरह की होती है। बच्चे और उनका बचपन अलग ही होता है। बच्चे हमेशा जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। उन्हें अगर किसी काम के लिए मना किया जाए या रोका जाये तो संभवतः वे उस कार्य को चोरी छिपे ही सही परन्तु करेंगे अवश्य ही। वे उस कार्य को करके देखना चाहते हैं, जाँचना और परखना चाहते हैं। 'कौन सी मौत' कहानी में बच्चों को कम्यून से दूर रहने की हिदायत दी जाती है तो वे वहाँ चोरी-छिपे जाने लगे और स्वामी जी से मिलने लगे। क्योंकि उन्हें कम्यून के बारे में जानने की उत्सुकता थी लोगों द्वारा कम्यून के बारे में कई प्रकार की बातें होती थीं, जिससे उन तीनों बच्चों के मन की बढ़ती हुए उत्सुकता और भी प्रबल हो गई और एक दिन तीनों बच्चे कम्यून के अंदर चल जाते हैं।

"यह कौतूहल इतना बढ़ा कि एक दिन हम तीनों चुपके से उस कम्यून में घुस गए। चुपके से माली मुहल्ले वालों से बचकर। हमें सख्त हिदायत जो थी, कि हम उस तरफ फटके भी नहीं। हम यूं ही नहीं गए थे। अक्सर जब हम खेलते, कम्यून वाले स्वामीजी हमें कम्यून के अंदर से देखते थे। फिर एक दिन वे हमारे पास आए और हमें कम्यून आने को कह गए।"8

'हँसोड़ हँसुली' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने हमारे समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं का रेखांकन किया है । कहानी में चित्रित समस्याओं का प्रभाव हमेशा से ही समाज में देखा जाता रहा है और शायद आगे भी यह देखा जाता रहेगा, क्योंकि इन समस्याओं की जड़ें इतने गहरे में समायी हुई है कि इन्हें निकाल पाना या उनसे निजात पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। कहानी में तो सिर्फ एक बाबूजी है, परन्तु समाज में तो बाबूजी जैसी फौज चारों तरफ फैली हुई है, जो कदम दर कदम आदमी को परेशान किए हुए है।

तरुण भटनागर विश्वसनीय परिस्थितियों के बीच में अपने पात्रों को रखकर कहानी का विन्यास करते हैं। कहानी का रचाव उन्हें सपाट होने से बचाता है। आँचलिक और तद्भव शब्दों के इस्तेमाल से वे कहानी की देशज प्रकृति का निर्माण करते हैं। इस प्रकार तरुण भटनागर अपनी कहानी की पठनीयता को सुरक्षित रखकर उसे रचनात्मक हस्तक्षेप का माध्याम बनाते हैं। वे अपनी कहानियों में चित्रात्मकता का प्रयोग करते है। उनकी कहानी पढ़ते समय चित्र और दृश्य आँखों के सामने प्रस्तुत से होने लगते है।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अक्टूबर 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

'हंसोड़ हँसुली' कहानी में यह जगह जगह देखने को मिलता है।

"दूर अनजानी जगहों को जाते धुलहे रास्ते छोटे आड़े-टेढ़े खेतों में ज्वार, मकई और गेंहू के सूखते पीलिया खेत। खेतों में कहीं दूर-दूर बाँस-फूस की मचानें। किसी मचान में कोई अकेला गँवई किसान तो कोई किर्राते रेड़यो से सुनता-सुनाता। इक से काकभगाऊ और एक से कौए। सबके लिए सम्पे से एक सी अंगार झोंकती धूप। मिट्टी गोबर और गेरुए की एक सी कड़वी गंध वाली दीवारों पर लुढ़की एक सी गाँवड़ी खपरीली छतों। ढ़ेंकी और हालर की एक ही किडर किडर। एकसे कुएँ। एक-सी कुंडी, डबरा-डबरी। एक सी कुँओं की पार। एक सी लोहे की किरर-खिडर घिरियाँ। एक से यतीम खलिहान।"9

बाबूजी नशे का शिकार है। उन्हें नशा किसी मादक पदार्थ का नहीं बल्कि उनको नशा है हँसी का। वे हँसी को दूसरे नशों से बेहतर मानते थे क्योंकि अन्य नशे परिवार और समाज के लिए घातक होते हैं। परन्तु हँसी एक ऐसा नशा है जिसे किसी से छिपकर नहीं करना पड़ता है और न ही पकड़े जाने का खतरा रहता है। बाबूजी बद्दू को भी अपने जैसी हँसी सिखाना चाहते थे। शुरू में गाँव वाले बाबूजी से नाराज हो जाते थे तो बाबूजी उन्हें मना भी लेते थे। धीरेद्धीरे पूरे गाँव वासियों पर बाबूजी की हँसी का रंग चढ़ता गया। आखिकार वे सबके चहेते बन गए।

"बाबूजी गाँव में सबके चहेते हैं। जब पंचायत में वोट पड़ती आधे से ज्यादा गाँव बाबूजी की तरफ खड़ा हो जाता। लोगों ने कभी दूसरे मुखिया का नहीं सोचा बाबूजी ने लोगों को हंसी की लत लगा दी। छोटी छोटी बात पर गाली गलौज करने वाले और गाँजा बीड़ी धूककर समय और फेफड़ा जाया करने वाले लोग, यह सब छोड़ हँसी के लालच में बाबूजी के ओसारे खिंचे चले आते।"10

बाबूजी अपने साम्राज्य विस्तार के बीच में किसी भी रोड़े को सहन नहीं कर सकते थे। वे शास्त्रीजी को अपनी मुखियागीरी की राह का रोड़ा समझते थे। क्योंकि वह भी हाईस्कूल पास है और पोथी पुराणों की बात भी जानता है, इसलिए उसे नीचा दिखाने का कोई भी अवसर वे हाथ से नहीं गंवाना चाहते थे। वे किसी भी हालत में शास्त्री को मुखिया नहीं बनने देना चाहते थे। वे सपने में भी शास्त्री से घृणा करते हैं। वे शास्त्रीजी को लड़इय्यों के संकट के समाधान के लिए मुहरा बना देता हैं। शास्त्री अजीब संकट में पड़ जाता है और वह गांव वालों को हथियार रखने और लड़इय्यों को देखते ही मारने की बात कहता है। बाबूजी के बिछाए जाल में शास्त्री फंस जाता है और वे खुशी से गद्गगद होकर उसकी हंसी उड़ाते हैं।

"इ का कह रहे हैं शास्त्रीजी। लड़इय्या को मारना है, कौनों चूहा नहीं...।"

सारे गांव वाले खिलखिलाकर हंस दिए। हंसोड़ों ने हंसी को और बढ़ाया "... हा, हा, हा, हो, हो, हो"। ऐसे मौकों पर हँसेड़ हँसी को देर तक बढ़ाते । बाबूजी ने चोरी से उनको बता रखा है 'जब शास्त्री पर हँसी, व हँसी का देर तक बढ़ावा।' शास्त्री बगले झाँकने लगा। बाबूजी ने लोटे का पानी मुँह के कुप्पे में उड़ेला। कुचकुचद्दकुचकुच किया और पानी खैनी सहित कुल्ला कर दिया और ऐसा मुँह बनाया मानो शास्त्री ने खैनी न देकर जहर दे दिया हो।11

तरूण भटनागर अपनी कहानियों में मनुष्य की लाचारी को गहरी करूणा के साथ अंकित करते हैं। गहरे मानवीय सरोकारों में गूँथकर। माँ के कत्ल का राज जानने के बाद रामा लाचारी और

घृणा से छटपटाने लगता है। उसके मन में शास्त्री के प्रति इतनी नफरत बढ़ने लगती है कि उसे जंगल में लड़इय्यों की आहट सुनाई देने लगती है। भारतीय ग्रामीण जीवन का अंकन तरुण भटनागर के लिए एक मात्र आंदोलन या नारा नहीं है। वे अच्छी तरह समझते हैं कि अपनी सारी सादगी, सहजता के बाद भी ध्वंस हमेशा सामंती व्यवस्था और पूँजीवाद के दो तरफ दबाव के परिणामस्वरूप भारतीय निम्न वर्ग की नियति के बदल पाने के लिए एक गहरा और निर्णायक संघर्ष अपेक्षित है। इनकी इस कहानी में पीड़ित शोषित वर्ग के अभिशप्त जीवन उस पर होने वाले अत्याचार और उसके निर्मम शोषण के बड़े यथार्थ, प्रामाणिक और आत्मीय चित्र जगह-जगह देखने को मिलते हैं। मंदिर में शास्त्री द्वारा पूजा पाठ करते समय जब रामा और बद्दू वहाँ पहुँचते हैं तो बद्दू मंदिर के चबूतरे पर बैठता है और रामा मंदिर से दूर चुआ के किनारे गीली मिट्टी पर। रामा अगर गलती से भी मंदिर के चबूतरे पर बैठ जाए तो कई गाँवों में हलचल मच जाएगी। रामा शास्त्री को देखकर घृणा से भर जाता है उसका क्रोध उफनने लगता है। शास्त्री रामा को देखकर घृणा और तिरस्कार से भर जाता है। मिसरीबाई के मरने के तेरह दिन बाद गाँव में फिर से लड़इय्यों का आतंक हुआ और अबकी बार शास्त्री जी उनका शिकार बन जाते हैं। फिर से अचानक एक दिन गांव में कोहराम मच जाता है। बाबूजी बनावटी हैरानी परेशान का प्रदर्शन करते हुए अपने ओसारे पर बैठे हैं और गांव वालों को लड़इय्यों से निपटने के उपाय बताते हैं।

“लड़इय्या का खाली हुआहुआ मत जाना। उके पास पूरा हिसाब है। कौन मशाल जलात है औ कौन नाहीं। कौन बाबूजी का कहा मानत है औ कौन नाहीं। ऐसी बात शास्त्री जी का खा गई है। हे भगवान दुरुपया का तेल अधन्नी के मशाल। पर शास्त्री जी, कौनों के नाहीं सुने। मसाल नाहीं जलाए। सुन लेया। अगर मशाल ना हीं जलइहा त मरन का तैयार हुइ जा। मशाल त जलबे करब। लड़इय्या मारे का बात कल पंचायत में करब। कौनों तोड़ निकालब। बाबूजी, सब मरज की दवा जानत हैं।”12

वैसे तो बाबूजी दिखाबे के लिए जात्पिांत को नहीं मानते और रामा को अपने बेटे के समान मानते हैं परन्तु बाबूजी का निश्चल विश्वास, भावुकता सद्प्रवृत्तियाँ और हृदय परिवर्तन से सभी एक खोखले बाँस की तरह ही हमेशा था जो अंत में उन्होंने रामा के साथ किया। बाबूजी को रामा की हँसी, उसका बेखौफपन उन्हें उसका दारू का गिलास देना और उनके चैकीदारों के प्रस्ताव की कॉपी को जला देना बेहद नागवार होता है। तभी से वह उनकी आँख की किरकिरी बन जाता है और वे उसे जल्द से जल्द निकाल फेंकना चाहते थे । इसके लिए उन्होंने बद्दू को अच्छे से सिखा-पढ़ा कर तैयार कर लिया है। एक बार फिर से गाँव में पांचों लड़इय्यों का आतंक और अबकी बार उनका शिकार बनता है। रामा। बाबूजी अपने ओसारे में मगरमच्छ की तरह आंसू बहाते हुए चिल्ला-चिल्ला कर रो रहे हैं। लोरमी गांव में कलेक्टर, बड़े-बड़े अधिकारी और गाड़ियों का मेला सा लग जाता है। लड़इय्यों को पकड़ने के लिए तरह तरह के सामान लिए सभी मौजूद हैं। बाबूजी बहुत दुखी हैं और कलेक्टर उन्हें समझाता है। सारी रात जंगल विभाग की टीम अपने हथियारों सहित लडइय्यों को ढूंढती है मगर कुछ हाथ नहीं आता है। कुछ दिनों तक ये काम चलाता है पर लडइय्या न मिले समय के साथ बाबूजी का ओहदा बढ़ जाता है वे विधान

सभा तक पहुँच जाते हैं इसके लिए उन्हें गाँव के कई लोगों के साथ अपने बेटे की बलि देनी पड़ी मगर वे उससे भी पीछे नहीं हटे। उनकी महत्वकांक्षाएँ, गाँव, समाज और परिवार से ऊँची थी। मगर जीवन के आखिरी पड़ाव में बाबूजी अपने किए कार्यों के कारण रोने को मजबूर दिखाई देते हैं और स्वयं आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं। कुल मिलाकर यह कहानी समकालीन स्वरूप में कुछ जोड़ती है, तोड़ती या घटाती नहीं।

निष्कर्ष

तरूण भटनागर हिन्दी कथा साहित्य के उन थोड़े साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने पूर्वाग्रहों से अलग हटकर तथा नए क्षेत्रों में कदम रखने का साहस किया है साथ ही साथ भाषा में अनूठापन और कहानी में तरह तरह के प्रयोग करने के स्तर पर अपनी सशक्त और अलग पहचान बनाई है। बहुदा कहानी लेखन में एक ही परिपाटी दिखाई देती है परन्तु हिन्दी के समकालीन रचना संसार में तरूण भटनागर की कहानियों में एक तरह की विविधता है जो सबसे अलग है और पाठक में उत्सुकता पैदा करती है। लेखन में विदेशी और अछूती भूमि जिस पर अधिकांशतः ध्यान नहीं दिया जाता है। ये विसंगतियाँ और समस्याएं देश और समाज के लिए घातक हैं। इनकी उपस्थिति से समाज और देश का मार्ग अवरूद्ध होता है। अतः हमारा प्रयास समाज से इन समस्याओं को दूर करना होना चाहिए जिससे समाज प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 मुक्तिबोध, एक साहित्यिक डायरी, पृष्ठ 88
2 तरुण भटनागरः गुलमेंहदी की झाड़ियां, पृष्ठ 7
3 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियां, पृष्ठ 29
4 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियां, पृष्ठ 41
5 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, पृष्ठ 53
6 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियां, पृष्ठ 58
7 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, पृष्ठ 76
8 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, पृष्ठ 94
9 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, पृष्ठ 109
10 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, पृष्ठ 111
11 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, पृष्ठ 117
12 तरुण भटनागर, गुलमेंहदी की झाड़ियां, पृष्ठ 132